****

Gajanan Madhav Muktibodh

**Born** 1917

**Died** 1964

**Poetry:**

**प्रथम संस्करण से / चांद का मुँह टेढ़ा है**

मुक्तिबोध की लम्बी कविताओं का पैटर्न विस्तृत होता है। एक विशाल म्यूरल पेण्टिंग आधुनिक प्रयोगवादी,अत्याधुनिक जिसमें सब चीजें ठोस और स्थिर होती है,किसी बहुत ट्रैजिक सम्बन्ध के जाल में कसी हुई।... अगर किसी ने स्वयं मुक्तबोध की जबानी उनकी कोई रचना सुनी हो तो...कविता समाप्त होने पर ऐसा लगता है जैसे हम कोई आतंकित करनेवाली फिल्म देखने के बाद एकाएक होश में आये हों।.. चूँकि वह पेण्टर और मूर्तिकार हैं अपनी कविताओं में-और उनकी शैली बड़ी शक्तिशाली, कुछ यथार्थवादी मेक्सिकन भित्ति-चित्रों की सी है। वह एक-एक चित्र को मेहनत से तैयार करते हैं, और फिर उसके अम्बार लगाते चलते है। एक तारतम्य जैसे किसी ट्रैजिक नाट्य मंच पर एक उभरती भीड़ का दृश्य-पूर्वनियोजित प्रभाव के साथ खड़ी।... इनके प्रतीक गाथाओं के टुकड़ों में सन्दर्भ आधुनिक होता है। यह आधुनिक यथार्थ कथा का भयानकतम अंश होता है...मुक्तिबोध का वास्तविक मूल्यांकन अगली,यानी अब आगे की पीढ़ी निश्चय ही करेगी, क्योंकि उसकी करूण अनुभूतियों को, उसकी व्यर्थता और खोखलेपन को पूरी शक्ति के साथ मुक्तिबोध ने ही अभिव्यक्त किया है। इस पीढ़ी के लिए शायद यही अपना खास महान कवि हो।

**प्रथम संस्करण से**  
  
मुक्तिबोध अगर स्वस्थ होते तो पता नहीं अपनी कविताओं का संकलन किस प्रकार करते। शायद उन्होंने अपनी कविताएँ अधिक विवेक और परख के साथ चुनी होतीं क्योंकि इन तमाम आत्मपरक कविताओं के कवि मुक्तिबोध न केवल दूसरों के प्रति बल्कि ख़ुद अपने प्रति एक सही और तटस्थ दृष्टि रखते थे और, दूसरों से या अपनों से उन्हें जो भी मोह रहा हो। अपने से मोह उन्हें कभी नहीं रहा।  
  
अपने प्रति यह निर्मोह उनकी इन कविताओं की रचना-प्रकिया में भी प्रकट है जिन्हें उन्होंने कई बार लिखा और एक ही कविता के कई प्रारूप हैं। इस संकलन में अन्तिम प्रारूपों को ही शामिल किया गया है, हालाँकि मुक्तिबोध ने इन्हें अन्तिम प्रारूप मान लिया होगा यह विश्वास कर सकना कठिन है।  
  
अपने-आपसे, जैसे किसी पहाड़ से, बराबर जूझते रहनेवाले कवि ये लंबी कविताएँ ज़्यादातर पिछले दस साल की हैं। मुक्तिबोध का पहला संकलन उनकी पहली कविताओं का नहीं बल्कि अन्तिम (फ़िलहाल जब तक वह निरोग नहीं होते तब तक अन्तिम) कविताओं का संकलन हो—हमारे सामाजिक जीवन में कविता को क्या स्थान हासिल है, इसका इससे अच्छा परिचय और क्या मिल सकता है ! वास्तव में कविता मरणासन्न है या समाज, इसका फ़ैसला भी कवि और समाज दोनों ही अपने-अपने ढंग से करेंगे। मुक्तिबोध तो शायद यह नहीं मानते मगर मैं यह ज़रूर मानता हूँ कि अपनी मृत्यु के लिए कवि भले ही ज़िम्मेदार हो, समाज की मृत्यु के लिए क़तई नहीं।  
  
किसी और कवि की कविताएँ उसका इतिहास न हों, मुक्तिबोध की कविताएँ अवश्य उनका इतिहास हैं। जो इन कविताओं को समझेंगे उन्हें मुक्तिबोध को किसी और रूप में समझने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी। जिंदगी के एक-एक स्नायु के तनाव को एक बार जीवन में और दूसरी बार अपनी कविताओं में जीकर मुक्तिबोध ने अपनी समृति के लिए सैकड़ों कविताएँ छोड़ी हैं और ये कविताएँ ही उनका जीवनवृत्तान्त हैं।  
  
बीमारी के दौरान मुक्तिबोध ने इच्छा ज़ाहिर की कि इस संकलन में उनकी दो कविताएँ-‘चम्बल की घाटियाँ’ और ‘आशंका के द्वीप अँधेरे में’—ज़रूर शामिल की जाएँ। दोनों एक के बाद दूसरी छापी जाएँ और दूसरी का शीर्षक बदल दिया जाए। उन्होंने कहा था कि ‘आशंका के द्वीप अँधेरे में’ शीर्षक एक विशेष मनःस्थिति के प्रवाह में मैंने दिया था। उनकी इच्छा के मुताबिक शीर्षक से मैंने ‘आशंका के द्वीप’ हटा दिया है, हालाँकि मुझे लगता है यह शीर्षक इस कविता के अर्थ को अधिक अच्छी तरह व्यंजित करता है। ये दोनों ही कविताएँ उनकी, बीमार पड़ने के कुछ समय पहले की कविताएँ हैं और इस दृष्टि से अब तक की कविताओं में ये उनकी अन्तिम कविताएँ हैं।  
  
मुक्तिबोध को शायद यह भी भय था कि वे सब अपनी अधूरी कविताएँ पूरी नहीं कर पाएँगे अतः उन्होंने मुझसे कहा था उनकी कुछ अधूरी कविताएँ सम्पादित कर मैं इस संकलन में शामिल कर दूँ। मगर यह सोचकर कि मुक्तिबोध की रचना-प्रक्रिया समझने में उनकी ये अधूरी कविताएँ सहायक होंगी, मैंने उन्हें वैसा का वैसा एक अलग संकलन में छपने के लिए रख छोड़ा है।  
  
मुक्तिबोध, जो अपनी कविताओं को अपनी जिन्दगी से अधिक सहेजते थे, इस समय अपना संग्रह देख सकने में असमर्थ हैं बेहोश हैं। लेकिन वे सब नवयुवक कवि जिन्हें मुक्तिबोध ने इस हद तक प्रेम किया है कि वे कभी मुक्तिबोध को भूल नहीं सकते, यह विश्वास करते हैं कि वे पूरी तरह निरोगी होंगे और अपनी कविताओं के पहले संकलन को देख सकने में समर्थ होंगे।  
इस संकलन के प्रकाशन में अनेक नवयुवक साहित्यकारों की दिलचस्पी रही है और संकलन के लिए ‘कविताओं’ के चुनाव में मुख्य रूप से श्री अशोक बाजपेई की सहायता प्राप्त हुई है।

**श्रीकान्त वर्मा  
नयी दिल्ली**

भूल-ग़लती  
आज बैठी है ज़िरहबख्तर पहनकर  
तख्त पर दिल के,   
चमकते हैं खड़े हथियार उसके दूर तक,  
आँखें चिलकती हैं नुकीले तेज पत्थर सी,  
खड़ी हैं सिर झुकाए

सब कतारें 

बेजुबां बेबस सलाम में,

अनगिनत खम्भों व मेहराबों-थमे

दरबारे आम में।

सामने  
बेचैन घावों की अज़ब तिरछी लकीरों से कटा  
चेहरा  
कि जिस पर काँप  
दिल की भाप उठती है...  
पहने हथकड़ी वह एक ऊँचा कद  
समूचे जिस्म पर लत्तर  
झलकते लाल लम्बे दाग  
बहते खून के  
वह क़ैद कर लाया गया ईमान...  
सुलतानी निगाहों में निगाहें डालता,  
बेख़ौफ नीली बिजलियों को फैंकता  
खामोश !!

सब खामोश

मनसबदार  
शाइर और सूफ़ी,  
अल गजाली, इब्ने सिन्ना, अलबरूनी  
आलिमो फाजिल सिपहसालार, सब सरदार

हैं खामोश !!

नामंजूर  
उसको जिन्दगी की शर्म की सी शर्त  
नामंजूर हठ इनकार का सिर तान..खुद-मुख्तार  
कोई सोचता उस वक्त-  
छाये जा रहे हैं सल्तनत पर घने साये स्याह,  
सुलतानी जिरहबख्तर बना है सिर्फ मिट्टी का,  
वो-रेत का-सा ढेर-शाहंशाह,  
शाही धाक का अब सिर्फ सन्नाटा !!  
(लेकिन, ना   
जमाना साँप का काटा)  
भूल (आलमगीर)  
मेरी आपकी कमजोरियों के स्याह  
लोहे का जिरहबख्तर पहन, खूँखार   
हाँ खूँखार आलीजाह,  
वो आँखें सचाई की निकाले डालता,  
सब बस्तियाँ दिल की उजाड़े डालता  
करता हमे वह घेर  
बेबुनियाद, बेसिर-पैर..  
हम सब क़ैद हैं उसके चमकते तामझाम में

शाही मुकाम में !!

इतने में हमीं में से   
अजीब कराह सा कोई निकल भागा  
भरे दरबारे-आम में मैं भी  
सँभल जागा  
कतारों में खड़े खुदगर्ज-बा-हथियार  
बख्तरबंद समझौते   
सहमकर, रह गए,  
दिल में अलग जबड़ा, अलग दाढ़ी लिए,  
दुमुँहेपन के सौ तज़ुर्बों की बुज़ुर्गी से भरे,  
दढ़ियल सिपहसालार संजीदा

सहमकर रह गये !!

लेकिन, उधर उस ओर,  
कोई, बुर्ज़ के उस तरफ़ जा पहुँचा,  
अँधेरी घाटियों के गोल टीलों, घने पेड़ों में  
कहीं पर खो गया,  
महसूस होता है कि यह बेनाम  
बेमालूम दर्रों के इलाक़े में  
( सचाई के सुनहले तेज़ अक्सों के धुँधलके में)  
मुहैया कर रहा लश्कर;  
हमारी हार का बदला चुकाने आयगा  
संकल्प-धर्मा चेतना का रक्तप्लावित स्वर,  
हमारे ही हृदय का गुप्त स्वर्णाक्षर  
प्रकट होकर विकट हो जायगा !!  
  
( कविता संग्रह, "चाँद का मुँह टेढ़ा है से" )

**ज़िन्दगी के...  
कमरों में अँधेरे**

लगाता है चक्कर  
कोई एक लगातार;  
आवाज़ पैरों की देती है सुनाई   
बार-बार....बार-बार,   
वह नहीं दीखता... नहीं ही दीखता,   
किन्तु वह रहा घूम   
तिलस्मी खोह में ग़िरफ्तार कोई एक,   
भीत-पार आती हुई पास से,   
गहन रहस्यमय अन्धकार ध्वनि-सा   
अस्तित्व जनाता  
अनिवार कोई एक,  
और मेरे हृदय की धक्-धक्   
पूछती है--वह कौन   
सुनाई जो देता, पर नहीं देता दिखाई !   
इतने में अकस्मात गिरते हैं भीतर से   
फूले हुए पलस्तर,   
खिरती है चूने-भरी रेत   
खिसकती हैं पपड़ियाँ इस तरह--   
ख़ुद-ब-ख़ुद   
कोई बड़ा चेहरा बन जाता है,   
स्वयमपि   
मुख बन जाता है दिवाल पर,   
नुकीली नाक और   
भव्य ललाट है,   
दृढ़ हनु   
कोई अनजानी अन-पहचानी आकृति।   
कौन वह दिखाई जो देता, पर   
नहीं जाना जाता है !!   
कौन मनु ?   
  
बाहर शहर के, पहाड़ी के उस पार, तालाब...   
अँधेरा सब ओर,   
निस्तब्ध जल,   
पर, भीतर से उभरती है सहसा   
सलिल के तम-श्याम शीशे में कोई श्वेत आकृति   
कुहरीला कोई बड़ा चेहरा फैल जाता है   
और मुसकाता है,   
पहचान बताता है,   
किन्तु, मैं हतप्रभ,   
नहीं वह समझ में आता।   
  
**अरे ! अरे !!**

तालाब के आस-पास अँधेरे में वन-वृक्ष   
चमक-चमक उठते हैं हरे-हरे अचानक   
वृक्षों के शीशे पर नाच-नाच उठती हैं बिजलियाँ,   
शाखाएँ, डालियाँ झूमकर झपटकर   
चीख़, एक दूसरे पर पटकती हैं सिर कि अकस्मात्--   
वृक्षों के अँधेरे में छिपी हुई किसी एक   
तिलस्मी खोह का शिला-द्वार   
खुलता है धड़ से   
........................   
घुसती है लाल-लाल मशाल अजीब-सी   
अन्तराल-विवर के तम में   
लाल-लाल कुहरा,   
कुहरे में, सामने, रक्तालोक-स्नात पुरुष एक,   
रहस्य साक्षात् !!   
  
तेजो प्रभामय उसका ललाट देख   
मेरे अंग-अंग में अजीब एक थरथर   
गौरवर्ण, दीप्त-दृग, सौम्य-मुख   
सम्भावित स्नेह-सा प्रिय-रूप देखकर   
विलक्षण शंका,   
भव्य आजानुभुज देखते ही साक्षात्   
गहन एक संदेह।   
  
वह रहस्यमय व्यक्ति   
अब तक न पायी गयी मेरी अभिव्यक्ति है   
पूर्ण अवस्था वह   
निज-सम्भावनाओं, निहित प्रभावों, प्रतिमाओं की,   
मेरे परिपूर्ण का आविर्भाव,   
हृदय में रिस रहे ज्ञान का तनाव वह,   
आत्मा की प्रतिमा।   
प्रश्न थे गम्भीर, शायद ख़तरनाक भी,   
इसी लिए बाहर के गुंजान   
जंगलों से आती हुई हवा ने   
फूँक मार एकाएक मशाल ही बुझा दी-   
कि मुझको यों अँधेरे में पकड़कर   
मौत की सज़ा दी !   
  
किसी काले डैश की घनी काली पट्टी ही   
आँखों में बँध गयी,   
किसी खड़ी पाई की सूली पर मैं टाँग दिया गया,   
किसी शून्य बिन्दु के अँधियारे खड्डे में   
गिरा दिया गया मैं  
अचेतन स्थिति में !

सूनापन सिहरा,   
अँधेरे में ध्वनियों के बुलबुले उभरे,   
शून्य के मुख पर सलवटें स्वर की,   
मेरे ही उर पर, धँसाती हुई सिर,   
छटपटा रही हैं शब्दों की लहरें   
मीठी है दुःसह!!   
अरे, हाँ, साँकल ही रह -रह   
बजती है द्वार पर।   
कोई मेरी बात मुझे बताने के लिए ही   
बुलाता है -- बुलाता है   
हृदय को सहला मानो किसी जटिल   
प्रसंग में सहसा होठों पर   
होठ रख, कोई सच-सच बात   
सीधे-सीधे कहने को तड़प जाय, और फिर   
वही बात सुनकर धँस जाय मेरा जी--   
इस तरह, साँकल ही रह-रह बजती है द्वार पर   
आधी रात, इतने अँधेरे में, कौन आया मिलने?   
विमन प्रतीक्षातुर कुहरे में घिरा हुआ   
द्युतिमय मुख - वह प्रेम भरा चेहरा --   
भोला-भाला भाव--   
पहचानता हूँ बाहर जो खड़ा है !!   
यह वही व्यक्ति है, जी हाँ !   
जो मुझे तिलस्मी खोह में दिखा था।   
अवसर-अनवसर   
प्रकट जो होता ही रहता   
मेरी सुविधाओं का न तनिक ख़याल कर।   
चाहे जहाँ,चाहे जिस समय उपस्थित,   
चाहे जिस रूप में   
चाहे जिन प्रतीकों में प्रस्तुत,   
इशारे से बताता है, समझाता रहता,   
हृदय को देता है बिजली के झटके !!   
अरे, उसके चेहरे पर खिलती हैं सुबहें,   
गालों पर चट्टानी चमक पठार की   
आँखों में किरणीली शान्ति की लहरें   
उसे देख, प्यार उमड़ता है अनायास!   
लगता है-- दरवाजा खोलकर   
बाहों में कस लूँ,   
हृदय में रख लूँ   
घुल जाऊँ, मिल जाऊँ लिपटकर उससे   
परन्तु, भयानक खड्डे के अँधेरे में आहत   
और क्षत-विक्षत, मैं पड़ा हुआ हूँ,   
शक्ति ही नहीं है कि उठ सकूँ जरा भी   
(यह भी तो सही है कि   
कमज़ोरियों से ही लगाव है मुझको)

**इसीलिए टालता हूँ उस मेरे प्रिय को**

कतराता रहता,   
डरता हूँ उससे।   
वह बिठा देता है तुंग शिखर के   
ख़तरनाक, खुरदरे कगार-तट पर   
शोचनीय स्थिति में ही छोड़ देता मुझको।   
कहता है-"पार करो पर्वत-संधि के गह्वर,   
रस्सी के पुल पर चलकर   
दूर उस शिखर-कगार पर स्वयं ही पहुँचो"   
अरे भाई, मुझे नहीं चाहिए शिखरों की यात्रा,   
मुझे डर लगता है ऊँचाइयों से   
बजने दो साँकल!!   
उठने दो अँधेरे में ध्वनियों के बुलबुले,   
वह जन वैसे ही   
आप चला जायेगा आया था जैसा।   
खड्डे के अँधेरे में मैं पड़ा रहूँगा   
पीड़ाएँ समेटे !!   
क्या करूँ क्या नहीं करूँ मुझे बताओ,   
इस तम-शून्य में तैरती है जगत्-समीक्षा   
की हुई उसकी   
(सह नहीं सकता)   
विवेक-विक्षोभ महान् उसका   
तम-अन्तराल में (सह नहीं सकता)   
अँधियारे मुझमें द्युति-आकृति-सा   
भविष्य का नक्षा दिया हुआ उसका   
सह नहीं सकता !!   
नहीं, नहीं, उसको छोड़ नहीं सकूँगा,   
सहना पड़े--मुझे चाहे जो भले ही।   
  
कमज़ोर घुटनों को बार-बार मसल,   
लड़खड़ाता हुआ मैं   
उठता हूँ दरवाज़ा खोलने,   
चेहरे के रक्त-हीन विचित्र शून्य को गहरे   
पोंछता हूँ हाथ से,   
अँधेरे के ओर-छोर टटोल-टटोलकर   
बढ़ता हूँ आगे,   
पैरों से महसूस करता हूँ धरती का फैलाव,   
हाथों से महसूस करता हूँ दुनिया,   
मस्तक अनुभव करता है, आकाश   
दिल में तड़पता है अँधेरे का अन्दाज़,   
आँखें ये तथ्य को सूँघती-सी लगतीं,   
केवल शक्ति है स्पर्श की गहरी।   
आत्मा में, भीषण   
सत्-चित्-वेदना जल उठी, दहकी।   
विचार हो गए विचरण-सहचर।   
बढ़ता हूँ आगे,   
चलता हूँ सँभल-सँभलकर,   
द्वार टटोलता,   
ज़ंग खायी, जमी हुई जबरन   
सिटकनी हिलाकर   
ज़ोर लगा, दरवाज़ा खोलता   
झाँकता हूँ बाहर....   
  
सूनी है राह, अजीब है फैलाव,   
सर्द अँधेरा।   
ढीली आँखों से देखते हैं विश्व   
उदास तारे।   
हर बार सोच और हर बार अफ़सोस   
हर बार फ़िक्र   
के कारण बढे हुए दर्द का मानो कि दूर वहाँ, दूर वहाँ   
अँधियारा पीपल देता है पहरा।   
हवाओं की निःसंग लहरों में काँपती   
कुत्तों की दूर-दूर अलग-अलग आवाज़,   
टकराती रहती सियारों की ध्वनियों से।   
काँपती हैं दूरियाँ, गूँजते हैं फ़ासले   
(बाहर कोई नहीं, कोई नहीं बाहर)   
  
इतने में अँधियारे सूने में कोई चीख़ गया है   
रात का पक्षी   
कहता है--   
"वह चला गया है,   
वह नहीं आएगा, आएगा ही नहीं   
अब तेरे द्वार पर।   
वह निकल गया है गाँव में शहर में।   
उसको तू खोज अब   
उसका तू शोध कर!   
वह तेरी पूर्णतम परम अभिव्यक्ति,   
उसका तू शिष्य है(यद्यपि पलातक....)   
वह तेरी गुरू है,   
गुरू है...."

**समझ न पाया कि चल रहा स्वप्न या   
जाग्रति शुरू है।**

दिया जल रहा है,   
पीतालोक-प्रसार में काल चल रहा है,   
आस-पास फैली हुई जग-आकृतियाँ   
लगती हैं छपी हुई जड़ चित्रकृतियों-सी   
अलग व दूर-दूर   
निर्जीव!!   
यह सिविल लाइन्स है। मैं अपने कमरे में   
यहाँ पड़ा हुआ हूँ   
आँखें खुली हुई हैं,   
पीटे गये बालक-सा मार खाया चेहरा   
उदास इकहरा,   
स्लेट-पट्टी पर खींची गयी तसवीर   
भूत-जैसी आकृति--   
क्या वह मैं हूँ   
मैं हूँ?   
  
रात के दो हैं,   
दूर-दूर जंगल में सियारों का हो-हो,   
पास-पास आती हुई घहराती गूँजती   
किसी रेल-गाड़ी के पहियों की आवाज़!!   
किसी अनपेक्षित   
असंभव घटना का भयानक संदेह,   
अचेतन प्रतीक्षा,   
कहीं कोई रेल-एक्सीडेण्ट न हो जाय।   
चिन्ता के गणित अंक   
आसमानी-स्लेट-पट्टी पर चमकते   
खिड़की से दीखते।   
..........................   
हाय! हाय! तॉल्सतॉय   
कैसे मुझे दीख गये   
सितारों के बीच-बीच   
घूमते व रुकते   
पृथ्वी को देखते।   
  
शायद तॉल्सतॉय-नुमा   
कोई वह आदमी   
और है,   
मेरे किसी भीतरी धागे का आख़िरी छोर वह   
अनलिखे मेरे उपन्यास का   
केन्द्रीय संवेदन   
दबी हाय-हाय-नुमा।   
शायद, तॉल्सतॉय-नुमा।   
  
प्रोसेशन?   
निस्तब्ध नगर के मध्य-रात्रि-अँधेरे में सुनसान   
किसी दूर बैण्ड की दबी हुई क्रमागत तान-धुन,   
मन्द-तार उच्च-निम्न स्वर-स्वप्न,   
उदास-उदास ध्वनि-तरंगें हैं गम्भीर,   
दीर्घ लहरियाँ!!   
गैलरी में जाता हूँ, देखता हूँ रास्ता   
वह कोलतार-पथ अथवा   
मरी हुई खिंची हुई कोई काली जिह्वा   
बिजली के द्युतिमान दिये या   
मरे हुए दाँतों का चमकदार नमूना!!   
  
किन्तु दूर सड़क के उस छोर   
शीत-भरे थर्राते तारों के अँधियाले तल में   
नील तेज-उद्भास   
पास-पास पास-पास   
**आ रहा इस ओर!   
दबी हुई गम्भीर स्वर-स्वप्न-तरंगें**

शत-ध्वनि-संगम-संगीत   
उदास तान-धुन   
समीप आ रहा!!   
  
और, अब   
गैस-लाइट-पाँतों की बिन्दुएँ छिटकीं,   
बीचों-बीच उनके   
साँवले जुलूस-सा क्या-कुछ दीखता!!   
  
और अब   
गैस-लाइट-निलाई में रँगे हुए अपार्थिव चेहरे,   
बैण्ड-दल,   
उनके पीछे काले-काले बलवान् घोड़ों का जत्था   
दीखता,   
घना व डरावना अवचेतन ही   
जुलूस में चलता।   
क्या शोभा-यात्रा   
किसी मृत्यु दल की?   
  
अजीब!!   
दोनों ओर, नीली गैस-लाइट-पाँत   
रही जल, रही जल।   
नींद में खोये हुए शहर की गहन अवचेतना में   
हलचल, पाताली तल में   
चमकदार साँपों की उड़ती हुई लगातार   
लकीरों की वारदात!!   
सब सोये हुए हैं।   
लेकिन, मैं जाग रहा, देख रहा   
रोमांचकारी वह जादुई करामात!!   
  
विचित्र प्रोसेशन,   
गम्भीर क्वीक मार्च....   
कलाबत्तूवाला काला ज़रीदार ड्रेस पहने   
चमकदार बैण्ड-दल--   
अस्थि-रूप, यकृत-स्वरूप, उदर-आकृति   
आँतों के जाल से, बाजे वे दमकते हैं भयंकर   
गम्भीर गीत-स्वप्न-तरंगें   
उभारते रहते,   
ध्वनियों के आवर्त मँडराते पथ पर।   
बैण्ड के लोगों के चेहरे   
मिलते हैं मेरे देखे हुओं-से   
लगता है उनमें कई प्रतिष्ठित पत्रकार   
इसी नगर के!!   
बड़े-बड़े नाम अरे कैसे शामिल हो गये इस बैण्ड-दल में!   
उनके पीछे चल रहा   
संगीत नोकों का चमकता जंगल,   
चल रही पदचाप, ताल-बद्ध दीर्घ पाँत   
टेंक-दल, मोर्टार, ऑर्टिलरी, सन्नद्ध,   
धीरे-धीरे बढ़ रहा जुलूस भयावना,   
सैनिकों के पथराये चेहरे   
चिढ़े हुए, झुलसे हुए, बिगड़े हुए गहरे!   
शायद, मैंने उन्हे पहले भी तो कहीं देखा था।   
शायद, उनमें कई परिचित!!   
उनके पीछे यह क्या!!   
कैवेलरी!   
काले-काले घोड़ों पर ख़ाकी मिलिट्री ड्रेस,   
चेहरे का आधा भाग सिन्दूरी-गेरुआ   
आधा भाग कोलतारी भैरव,   
आबदार!!   
कन्धे से कमर तक कारतूसी बेल्ट है तिरछा।   
कमर में, चमड़े के कवर में पिस्तोल,   
रोष-भरी एकाग्रदृष्टि में धार है,   
कर्नल, बिग्रेडियर, जनरल, मॉर्शल   
कई और सेनापति सेनाध्यक्ष   
चेहरे वे मेरे जाने-बूझे से लगते,   
उनके चित्र समाचारपत्रों में छपे थे,   
उनके लेख देखे थे,   
यहाँ तक कि कविताएँ पढ़ी थीं   
भई वाह!   
उनमें कई प्रकाण्ड आलोचक, विचारक जगमगाते कवि-गण   
मन्त्री भी, उद्योगपति और विद्वान   
यहाँ तक कि शहर का हत्यारा कुख्यात   
डोमाजी उस्ताद   
बनता है बलवन   
हाय, हाय!!   
यहाँ ये दीखते हैं भूत-पिशाच-काय।   
भीतर का राक्षसी स्वार्थ अब   
साफ़ उभर आया है,   
छिपे हुए उद्देश्य   
यहाँ निखर आये हैं,   
यह शोभायात्रा है किसी मृत-दल की।   
विचारों की फिरकी सिर में घूमती है   
इतने में प्रोसेशन में से कुछ मेरी ओर   
आँखें उठीं मेरी ओर-भर   
हृदय में मानो कि संगीन नोंकें ही घुस पड़ीं बर्बर,   
सड़क पर उठ खड़ा हो गया कोई शोर--   
"मारो गोली, दाग़ो स्साले को एकदम   
दुनिया की नज़रों से हटकर   
छिपे तरीक़े से   
हम जा रहे थे कि   
आधीरात--अँधेरे में उसने   
देख लिया हमको   
व जान गया वह सब   
मार डालो, उसको खत्म करो एकदम"   
रास्ते पर भाग-दौड़ थका-पेल!!   
गैलरी से भागा मैं पसीने से शराबोर!!   
  
**एकाएक टूट गया स्वप्न व छिन्न-भिन्न हो गये   
सब चित्र**

जागते में फिर से याद आने लगा वह स्वप्न,   
फिर से याद आने लगे अँधेरे में चेहरे,   
और, तब मुझे प्रतीत हुआ भयानक   
गहन मृतात्माएँ इसी नगर की   
हर रात जुलूस में चलतीं,   
परन्तु दिन में   
बैठती हैं मिलकर करती हुई षड्यंत्र   
विभिन्न दफ़्तरों-कार्यालयों, केन्द्रों में, घरों में।   
  
हाय, हाय! मैंने उन्हे दैख लिया नंगा,   
इसकी मुझे और सज़ा मिलेगी।

अकस्मात्   
चार का ग़जर कहीं खड़का   
मेरा दिल धड़का,   
उदास मटमैला मनरूपी वल्मीक   
चल-विचल हुआ सहसा।   
अनगिनत काली-काली हायफ़न-डैशों की लीकें   
बाहर निकल पड़ीं, अन्दर घुस पड़ीं भयभीत,   
सब ओर बिखराव।   
मैं अपने कमरे में यहाँ लेटा हुआ हूँ।   
काले-काले शहतीर छत के   
हृदय दबोचते।   
यद्यपि आँगन में नल जो मारता,   
जल खखारता।   
किन्तु न शरीर में बल है   
अँधेरे में गल रहा दिल यह।   
  
एकाएक मुझे भान होता है जग का,   
अख़बारी दुनिया का फैलाव,   
फँसाव, घिराव, तनाव है सब ओर,   
पत्ते न खड़के,   
सेना ने घेर ली हैं सड़कें।   
बुद्धि की मेरी रग   
गिनती है समय की धक्-धक्।   
यह सब क्या है   
किसी जन-क्रान्ति के दमन-निमित्त यह   
मॉर्शल-लॉ है!   
दम छोड़ रहे हैं भाग गलियों में मरे पैर,   
साँस लगी हुई है,   
ज़माने की जीभ निकल पड़ी है,   
कोई मेरा पीछा कर रहा है लगातार   
भागता मैं दम छोड़,   
घूम गया कई मोड़,   
चौराहा दूर से ही दीखता,   
वहाँ शायद कोई सैनिक पहरेदार   
नहीं होगा फ़िलहाल   
दिखता है सामने ही अन्धकार-स्तूप-सा   
भयंकर बरगद--   
सभी उपेक्षितों, समस्त वंचितों,   
ग़रीबों का वही घर,वही छत,   
उसके ही तल-खोह-अँधेरे में सो रहे   
गृह-हीन कई प्राण।   
अँधेरे में डूब गये   
डालों में लटके जो मटमैले चिथड़े   
किसी एक अति दीन   
पागल के धन वे।   
हाँ, वहाँ रहता है, सिर-फिरा एक जन।   
  
किन्तु आज इस रात बात अजीब है।   
वही जो सिर फिरा पागल क़तई था   
आज एकाएक वह   
जागृत बुद्धि है, प्रज्वलत् धी है।   
छोड़ सिरफिरापन,   
बहुत ऊँचे गले से,   
गा रहा कोई पद, कोई गान   
आत्मोद्बोधमय!!   
खूब भई,खूब भई,   
जानता क्या वह भी कि   
सैनिक प्रशासन है नगर में वाक़ई!   
क्या उसकी बुद्धि भी जग गयी!   
  
(करुण रसाल वे हृदय के स्वर हैं   
गद्यानुवाद यहाँ उनका दिया जा रहा है)   
  
"ओ मेरे आदर्शवादी मन,   
ओ मेरे सिद्धान्तवादी मन,   
अब तक क्या किया?   
जीवन क्या जिया!!   
  
**उदरम्भरि बन अनात्म बन गये**

भूतों की शादी में क़नात-से तन गये,   
किसी व्यभिचारी के बन गये बिस्तर,   
  
दुःखों के दाग़ों को तमग़ों-सा पहना,   
अपने ही ख़यालों में दिन-रात रहना,   
असंग बुद्धि व अकेले में सहना,   
ज़िन्दगी निष्क्रिय बन गयी तलघर,   
अब तक क्या किया,   
जीवन क्या जिया!!   
बताओ तो किस-किसके लिए तुम दौड़ गये,   
करुणा के दृश्यों से हाय! मुँह मोड़ गये,   
बन गये पत्थर,   
बहुत-बहुत ज़्यादा लिया,   
दिया बहुत-बहुत कम,   
मर गया देश, अरे जीवित रह गये तुम!!   
लो-हित-पिता को घर से निकाल दिया,   
जन-मन-करुणा-सी माँ को हंकाल दिया,   
स्वार्थों के टेरियार कुत्तों को पाल लिया,   
भावना के कर्तव्य--त्याग दिये,   
हृदय के मन्तव्य--मार डाले!   
बुद्धि का भाल ही फोड़ दिया,   
तर्कों के हाथ उखाड़ दिये,   
जम गये, जाम हुए, फँस गये,   
अपने ही कीचड़ में धँस गये!!   
विवेक बघार डाला स्वार्थों के तेल में   
आदर्श खा गये!   
  
अब तक क्या किया,   
जीवन क्या जिया,   
ज़्यादा लिया और दिया बहुत-बहुत कम   
मर गया देश, अरे जीवित रह गये तुम..."   
  
मेरा सिर गरम है,   
इसीलिए गरम है।   
सपनों में चलता है आलोचन,   
विचारों के चित्रों की अवलि में चिन्तन।   
निजत्व-माफ़ है बेचैन,   
क्या करूँ, किससे कहूँ,   
कहाँ जाऊँ, दिल्ली या उज्जैन?   
वैदिक ऋषि शुनःशेप के   
शापभ्रष्ट पिता अजीर्गत समान ही   
व्यक्तित्व अपना ही, अपने से खोया हुआ   
वही उसे अकस्मात् मिलता था रात में,   
पागल था दिन में   
सिर-फिरा विक्षिप्त मस्तिष्क।   
  
हाय, हाय!   
उसने भी यह क्या गा दिया,   
यह उसने क्या नया ला दिया,   
प्रत्यक्ष,   
मैं खड़ा हो गया   
किसी छाया मूर्ति-सा समक्ष स्वयं के   
होने लगी बहस और   
लगने लगे परस्पर तमाचे।   
छिः पागलपन है,   
वृथा आलोचन है।   
गलियों में अन्धकार भयावह--   
मानो मेरे कारण ही लग गया   
मॉर्शल-लॉ वह,   
मानो मेरी निष्क्रिय संज्ञा ने संकट बुलाया,   
मानो मेरे कारण ही दुर्घट   
हुई यह घटना।   
चक्र से चक्र लगा हुआ है....   
जितना ही तीव्र है द्वन्द्व क्रियाओं घटनाओं का   
बाहरी दुनिया में,   
उतनी ही तेजी से भीतरी दुनिया में,   
चलता है द्वन्द्व कि   
फ़िक्र से फ़िक्र लगी हुई है।   
आज उस पागल ने मेरी चैन भुला दी,   
मेरी नींद गवाँ दी।   
 **मैं इस बरगद के पास खड़ा हूँ।**

मेरा यह चेहरा   
घुलता है जाने किस अथाह गम्भीर, साँवले जल से,   
झुके हुए गुमसुम टूटे हुए घरों के   
तिमिर अतल से   
घुलता है मन यह।   
रात्रि के श्यामल ओस से क्षालित   
कोई गुरू-गम्भीर महान् अस्तित्व   
महकता है लगातार   
मानो खँडहर-प्रसारों में उद्यान   
गुलाब-चमेली के, रात्रि-तिमिर में,   
महकते हों, महकते ही रहते हों हर पल।   
किन्तु वे उद्यान कहाँ हैं,   
अँधेरे में पता नहीं चलता।   
मात्र सुगन्ध है सब ओर,   
पर, उस महक--लहर में   
कोई छिपी वेदना, कोई गुप्त चिन्ता   
छटपटा रही है।